RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) ओ३म् जालन्धर

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

200वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

वर्षः 50, अंक : 2   एक प्रति : 2 रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 9 अप्रैल , 2023

विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124

दयानन्दाब्द : 199   वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 2, 6-9 अप्रैल 2023 तदनुसार 27 चैत्र, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

वेद ईश्वर की ओर से मनुष्यों के लिए बनाया गया संविधान है

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजाप्रतिः।

यजु. १८/७७

शब्दार्थ-दृष्ट्वा = देखकर, **रूपे** = दो रुपों को, **व्याकरोत्** = अलग किया है, **सत्य+अनृते** = सत्य और झूठ को दो विभागों में, **प्रजापतिः** = प्रजा के रक्षक परमेश्वर ने, **अश्रद्धाम्** = अश्रद्धा को, **अनृते** = झूठ बोलने में, **दधात्** = धारण कराता है, **श्रद्धाम्** = श्रद्धा को, प्रेम को, **सत्ये** = सत्य में, धारण करता है, **प्रजापतिः** = प्रजा का पालन करने वाला ईश्वर।

भावार्थ-''यह कार्य हिंसा है, वह अहिंसा, यह कार्य धर्म है, वह अधर्म, यह कार्य न्याय है, वह अन्याय, यह उचित है, वह अनुचित, यह सत्य है, वह असत्य, यह कार्य कर्त्तव्य है, वह अकर्त्तव्य'' इस विषय में भिन्न-भिन्न मत, पंथ, सम्प्रदायों, गुरुडमों, देशों में आज मतभेद पाया जाता है। सभी अपने-अपने सिद्धान्तों को, मान्यताओं को, परम्पराओं को प्रमाणों से, उदाहरणों से, येन केन प्रकारेण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और दूसरे जिस कार्य को सत्य धर्म मानते हैं उनको येन केन प्रकारेण गलत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। किसी विषय में एक मत हो पाना आज असंभव सा दिखाई देता है।

सत्यासत्य, धर्माधर्म, उचितानुचित, न्यायान्याय को लेकर पिछली अनेक शताब्दियों से शास्त्रार्थ होते रहे हैं, वाद-विवाद होते रहे हैं, युद्ध भी होते रहे हैं पुनरपि सत्यासत्य का अन्तिम निर्णय नहीं निकल पाया है। सभी पंथ अपने आप को ही सत्यवादी मानते हैं, अन्यों को असत्यवादीः अपने को ही प्रामाणिक मानते हैं अन्यों को अप्रामाणिक, हजारों वर्षों से यह सब कुछ होते हुए भी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में सभी पंथों की अब तक एक सहमति नहीं बन पायी है। आज विश्व के करोड़ों नहीं अरबों मनुष्यों का ईश्वर के विषय में, धर्म के विषय में, मोक्ष के विषय में, सत्य के विषय में, चोरी के विषय में, पाप के विषय में, पुण्य के विषय में, दया, क्षमा, पूजा, परोपकार के विषय में मतभेद होने के कारण परस्पर संशय, घृणा, द्वेष, ऊँच-नीच भाव अविश्वास बने हुए हैं।

किसी वस्तु-व्यक्ति-क्रिया-पदार्थ का वास्तविक स्वरूप क्या है? उसके गुण कर्म स्वभाव क्या है? वह लाभकारी है या हानिकारक, दुःखदायी है या सुखदायक, साधक है या बाधक एतत् विषयक सत्य ज्ञान का कोई निर्धारण एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समुदाय मिलकर भी नहीं कर सकते क्योंकि मनुष्य एकदेशी, अल्पशक्तिमान, अल्पज्ञ है। इसके विपरीत ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ है वही किसी भी वस्तु विषय का यथार्थ ज्ञान रखता है और वस्तुओं का यथार्थ ज्ञाता होने के कारण वही इस विषय में निर्णायक है कि सत्य क्या है असत्य क्या है? कर्त्तव्य क्या है, अकर्त्तव्य क्या है? सुखदायी क्या है दुःखदायी क्या है? परमपिता परमात्मा ने अल्पज्ञ मनुष्यों को सृष्टि के आदि में संसार तथा संसार के समस्त जड़ चेतन पदार्थों के विषय में यथार्थ ज्ञान दिया है। वेद ईश्वर की ओर से मनुष्यों को उपदेश है कि संसार में कैसे जीना है। वेद ईश्वर की ओर से मनुष्यों के लिए बनाया गया संविधान है, विधि-विधान है, अनुशासन है, आदेश है।

सर्वत्र ईश्वर के बनाये वेद विधान के अनुसार सत्यासत्य का विभाजन करके संसार के पदार्थों का उपयोग करने वाले व्यक्ति सुखी होते हैं। इसके विपरित वेदाज्ञा को छोड़कर मनमाने ढंग से व्यवहार करने वाले, बोलने वाले, विचारने वाले दुःखी होते हैं। कोई व्यक्ति वेद न पढ़ा हो, अनपढ़ हो, उसके लिए भी सत्यासत्य धर्माधर्म का बोध कराने में एक व्यवस्था की है। वह है अन्तकरण की घण्टी। जब भी कोई व्यक्ति किसी भी कार्य में प्रवृत्त होता है तो ईश्वर की ओर से एक संकेत होता है। यदि कार्य सत्य है, धर्मयुक्त है तो मन में आनन्द उत्साह निर्भीकता, प्रसन्नता, शान्ति, सन्तोष की अनुभूति होती है। इसके विपरीत किसी कार्य को करते समय, करने से पूर्व तथा करने के पश्चात् मन में भय चिन्ता, लज्जा, शंका, अशान्ति, शोक आदि उत्पन्न होते हैं। यह व्यवस्था ईश्वर की ओर से है। सर्वान्तर्यामी प्रभो सभी मनुष्यों के हृदयों में बैठा हुआ अच्छे बुरे कामों का, सत्यासत्य का, धर्माधर्म का निश्चय कराता है, यह हम अल्पज्ञ मनुष्यों पर उस ईश्वर की महती कृपा है। यदि हमारी आत्मा में उसकी ओर से ऐसा संकेत न हो तो हम न जाने कितने उल्टे काम कर देते।

हे परमदयालु परमेश्वर अनेक बार हम सत्य और असत्य का भेद करने में असमर्थ हो जाते हैं। धर्म-अधर्म का भेद करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। हे देव हमारे मलिन अन्तःकरणों को शुद्ध बनाईये जिससे हम अनायास ही आप द्वारा मन में किये गये संकेतों को समझ लें और उनके अनुसार कार्यों को करें और पापों से बचकर सुखी, प्रसन्न, निर्भीक बनकर अपने जीवन को सफल बनावें और अन्यों को भी प्रेरणा दें।

अब मैं कौन उपाय करूं?

ले.-पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज

संसार-सागर के थपेड़ों में, इसकी भयंकर तरंगों में, और नारा समुद्रीय प्राणियों में अपने आप को घिरा पा कर इस सागर में गोते खाने वाला पुकार उठता है कि क्या कभी इससे छुटकारा मिल सकेगा?संसार सागर की गति को देख कर इसमें पड़े जीवों की दयनीय अवस्था को निहार कर, प्राणियों के हाहाकार को सुन कर मानव को यह प्रतीत होने लगता है कि बहुत बुरी तरह से फंस गये हैं, कैसे यहां से निकलना हो सकेगा? कैसे इस अथाह सागर को पार कर पाएंगे?

सारे दर्शनों के ऋषियों ने केवल इसीलिये दर्शन ग्रंथ बनाने का कष्ट उठाया, ताकि किसी प्रकार संसार के दुखों से मुक्ति मिल जाए और दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाए परन्तु यह संसार-सागर न तो दु:ख सागर है और न ही सु:ख सागर है, यह तो परमात्मा की अपार कृपा का एक प्रत्यक्ष उदाहरण है, जिसके द्वारा हर एक प्राणी को सुअवसर मिलता है कि वह भोग भी भोगे, और आनन्द स्वरूप के परम धाम-आनन्दधाम में पहुंच कर आनन्द ही आनन्द, मोद ही मोद तथा प्रमोद ही प्रमोद को प्राप्त कर ले।

''यत्रानन्दाश्च मोदश्चमुदः प्रमुदः आसते।''

(ऋग्वेद ९.११३.११)

और यह मानव देह तो मिलता ही इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये है, ताकि जन्म-जन्मान्तर के लिये कर्मों के फल भोगते हुये प्यारे प्रभु से मिलाप का शुभ प्रयत्न हो सके।

''इयं ते यज्ञिया तनूः'' (यजु.)

तेरा यह तन पूज्य प्रभु से मिलने का साधन है।

अपने प्रियतम से मिलने का साधन शरीर तो मिल गया परन्तु मानव तो इसे पाकर अधिक दु:खी हो उठा है, और कितने मानव तो इतने घबरा उठते हैं कि इस पवित्र दुर्लभ साधन को तोड़-फोड़ कर परे फैंक देना चाहते हैं। कोई अपने दु:ख को भूलने के लिये मादक द्रव्यों का सेवन करने लगते हैं, कोई दो घड़ी के लिये गम-गलत करने के लिये सिनेमा आदि खेलों की शरण लेते हैं, कोई ताश, शतरंज ले बैठते हैं, कोई अभक्ष्य, स्वादु पदार्थों में मन को अटका लेते हैं, और कोई स्पष्ट आत्महत्या करके समझते हैं कि छुटकारा हो गया। स्पष्ट आत्महत्या हो अथवा अस्पष्ट, यह सारे कृत्य आते आत्महत्या की संज्ञा ही में हैं, यह आत्महत्यारे यह भूल रहे हैं कि संसार सागर से पार होने का साधन आत्म हत्या नहीं। विचारें तो सही मानव कि इस शरीर को छोड़ कर क्या दुनिया को भी छोड़ सकोगे, और कही विश्राम पा सकोगे? कवि ने ठीक कहा है:

अब तो घबरा के कहते हैं कि मर जाएंगे।

मर कर भी चैन न पाया तो किधर जाएंगे।

छूटने के, पार हो जाने के ये तरीके सर्वथा बन्धन तथा दु:ख के हेतु है, दर्शन शास्त्रों के अनुसार जब तक द्रष्टा (जीवात्मा) का दृश्य (प्रकृति के बने जगत्) के साथ सम्बन्ध है, तब तक दु:ख-सु:ख, मरण-जन्म, पाप पुण्य, यह द्वंद बने ही रहेंगे। दुख सुख का अनुभव करने वाला जीवात्मा ही है परन्तु यह अनुभव तब करता है जब शरीर, इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों के साथ आत्मा का सम्बन्ध होता है। इन तीन प्रकार के बंध के आत्यन्तिक नाश होने पर ही भव सागर से पार होने का शुभ अवसर मिलता है।

दु:खों से अत्यन्त निवृत्ति का साधन यही है कि इधर उधर भटकने की अपेक्षा उस परम वैद्य के पास पहुंचें जो दु:खों, कष्टों क्लेशों से परे, पूर्ण परम आनन्द है और जिस की सहायता से मानव तीव्र इच्छा, बुद्धिपूर्वक भरसक प्रयत्न, तीव्र वैराग्य और पर्याप्त अभ्यास से आनन्द धाम तक जा पहुंचता है।

वहां तक कौन नहीं पहुंचते:-

जब यह जगत् रचा ही इसीलिये गया, और यह मानव शरीर दिया ही इसलिये गया ताकि मनुष्य परमानन्द को प्राप्त कर सके, तब वह प्रभु मिलता क्यों नहीं, वह दर्शन देता क्यों नहीं, छिप क्यों बैठा है वह? वास्तविक तथ्य तो यह है कि छिपा हुआ वह नहीं, हमने ही अपनी आंखें बंद कर रखी हैं, ऋग्वेद के दसवें मंडल में स्पष्ट बतलाया है कि:-

ओ३म् न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृत्ता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति।

(ऋ.१०.८२.७)

जिस (परमात्मा) ने (सब को) जन्म दिया है, वह तुम से अलग है, पर है तुम्हारे अंदर। तथापि तुम उसको जानते नहीं हो। क्यों नहीं जानते ? इसलिये कि प्राय: लोग (१)कुहर- अविद्या-अज्ञान से ढपे हुये है (२) व्यर्थ के वाद-विवाद ही में रत हैं (३) प्राणों के पोषण में तत्पर-पेटू बने हुए हैं, अथवा (४)उक्थ कोरे भजन-कीर्तन में लगे हुये ही, आयु बिता देते हैं।

इस माया के मायाधर को नानारूप धारण करने वाली प्रकृति के प्रेरक को, इस आभाविहीन जड़ माया को सुन्दरता भरने वाले कारीगर को, चन्द्रमा की चन्द्रिका के स्वामी को, हां इस सारे खेल के सूत्रधार को देखने में मानव क्यों सफल नहीं होता, इसका रहस्य ऊपर के मंत्र में बतला दिया है। अविद्या या अज्ञान के कुहरे ने जिन मनुष्यों के अन्त:करण को ढांप रखा है वह मायापति को कैसे देख पाएंगे, अविद्या ही तो मूल कारण है सारे क्लेशों तथा दु:खों का, इस अविद्या के वशीभूत हुआ मनुष्य अनात्म को आत्मतत्व समझ बैठता है, वास्तव में जो विषय और पदार्थ दु:ख का कारण हैं उन्हीं में सुख मानने लगता है, अपवित्र को पवित्र समझ कर उसी की पूजा में तत्पर रहता है परन्तु यह अवधि या अज्ञान आता कहां से है, क्यों यह कुहरे की तरह मनुष्य के अन्त:करण पर छा जाती है? हमारे पूर्वजों ने सूक्ष्म से सूक्ष्म बात की खोज की, और उसका पता भी पा लिया-सुनिए यह अविद्या कहां से आती है? सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता जानते है कि सोई हुई तीनों गुणों सत्-रज-तम में कोई सम अवस्था वाली प्रकृति में जब परमात्मा ने अपनी सविता शक्ति द्वारा गति उत्पन्न की तो उसका सब से पहला परिणाम महतत्व था। यह महतत्व सतोगुण की विशुद्धता से समष्टि रूप में सत्वमय चित्त कहलाता है, इसी से व्यष्टि चित्त बनते हैं, इस व्यष्टि चित्तों में जो लेशमात्र तम होता है, उसी तम में अविद्या रहती है और जब आत्मा द्वारा चित्त प्रति बिम्बत होता है तो आत्मा अविद्या के कारण यह समझने लगता है कि चित्त मैं ही हूं-बस यही से सारे क्लेशों, दु:खों, राग, द्वेषों का भान होने लगता है। चित्त में आत्म बुद्धि कर लेना दु:ख सागर में डूबे रहना है, यही तो हृदय ग्रंथि है जिसे खोले और तोड़े बिना शांति मिलती नहीं। योग मार्ग में इस अविद्या-अज्ञान-हृदय ग्रंथि को दूर करने का उपाय विवेकख्याति बतलाया है विवेक ख्याति उस अवस्था का नाम है जब साधक आत्म अनात्म वस्तुओं को पृथक-पृथक देख लेता है, इस का क्रम जो अनुभव में आया है वह यह है कि-

यम नियमों को अपने जीवन का अंग बनाते हुये आसान को दृढ़ कर अपने प्राणायाम द्वारा नाड़ी शुद्धि की जाती है, तब ग्रीवा, पीठ सीधी रख कर, नेत्र मूंद कर ध्यान भृकुटि-आज्ञा चक्र में जमाया जाता है, निरन्तर बार-बार यह धारणा करने से कि वहां ओ३म् अक्षर अथवा ज्योति है, जब यह धारणा परिपक्व हो जाती है तो वहां अभीष्ट पदार्थ अन्तर चक्षु से दिखाई देने लगता है, तब वहीं ज्योति ललाट चक्र से होती ब्रह्म रन्ध्र जो विज्ञान का एक केन्द्र है और जहां मन मंडल, बुद्धि मण्डल तथा इन्द्रियों के सूक्ष्म गोलक है, में जा पहुंचती है। इसी को सहस्रार चक्र भी कहते हैं। यहां मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को भिन्न भिन्न रंगों में देखा जाता है वहीं दिव्य निर्मल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का साक्षात्कार होता है, यह ध्यान की पहली परिपक्व अवस्था है। कितने ही मतों वाले इस तमाशे ही को वास्तविक दर्शन समझ बैठे हैं, परन्तु यह तो सब के सब भौतिक पदार्थ है, चाहे दिव्य और सूक्ष्म हैं। इन पंचतन्मात्राओं से भी अन्तरमुख होना होता है और फिर

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

प्राणायाम से मानसिक शक्तियों का विकास

आमतौर पर प्राणायाम को सांस नियंत्रण की प्रक्रिया समझा जाता है। प्राणायाम में किये जाने वाले अभ्यास को देख कर यह ठीक ही लगता है परन्तु इसके पीछे सच बात कुछ और ही है। प्राणायाम दो शब्दों के मेल से बना है। प्राण और आयाम। प्राण का मतलब महत्वपूर्ण ऊर्जा या जीवन शक्ति है। वह शक्ति जो सभी चीजों में मौजूद है, चाहे वह जीवित हो या निर्जीव। प्राणायाम श्वास के माध्यम से यह ऊर्जा शरीर की सभी नाड़ियों में पहुंचाती है। यम शब्द का अर्थ है नियंत्रण। प्राणायाम का उद्देश्य केवल मनुष्य को स्वस्थ, बलवान एवं चिरायु बनाना ही नहीं है, अपितु मनुष्य की मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना भी है, और यही प्राणायाम का उद्देश्य है। हमारे शरीर में पांच कोश तथा आठ चक्र हैं। इन कोशों के भीतर प्रवेश करने से जहां आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहां चक्रों को जागृत करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास होता है। ये चक्र संख्या में आठ हैं, जैसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा तथा ब्रह्मरन्ध्र। मूलाधार-गुदा के पास, स्वाधिष्ठान- मूलाधार से चार अंगुल ऊपर, मणिपूरक-नाभि स्थान में, सूर्य-पेट के ऊपर रीड़ की हड्डी के दोनों ओर, अनाहत- हृदय में विशुद्धि कण्ठ में, आज्ञा चक्र- भृकुटि में, तथा ब्रह्मरन्ध्र- ललाट के ऊपर है। योग ग्रन्थों में इन चक्रों के सम्बन्ध में बहुत वर्णन किया गया है।

हमारे समस्त शरीर में ज्ञानतन्तु जाल के समान फैले हुए हैं। यही ज्ञानतन्तु हमें रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कराते हैं तथा अनेक शारीरिक और मानसिक शक्तियों के आधार हैं। ये ज्ञानतन्तु हमारे शरीर रूपी नगर में, सड़कों के समान अथवा देहरूपी राष्ट्र में रेल की लाईनों के समान फैले हुए हैं। जैसे शहर में सड़कों के अनेक केन्द्र होते हैं, जहां पर कई सड़कें आकर मिलती हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रत्येक विषय के ज्ञानतन्तुओं के केन्द्र हैं। जहां पर उस-उस विषय के ज्ञानतन्तु आकर मिलते हैं। उन्हीं ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों का नाम चक्र है। इन चक्रों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दैवी शक्तियां निहित हैं, जोकि इन चक्रों के जागृत करने से ही प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य शक्तियों को आजकल के योगियों ने ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वरूप दे दिया है। जिस मनुष्य का जिस विषय का चक्र जागृत होता है, उसके ज्ञानतन्तुओं के जागृत होने से उन-उन ज्ञानतन्तुओं से सम्बन्धित समस्त शारीरिक तथा मानसिक दिव्य शक्तियां भी जागृत हो जाती हैं। इन्हीं अष्ट चक्रों को आधुनिक साईंस वालों ने हारमोन्स के नाम से कहा है और इन मूलाधार आदि चक्रों के उन्होंने अपनी परिभाषा में निम्न नाम रखे हैं- प्रोस्टेट, ऑवेरियन, एडेनेलिन, पेनक्रियास, थाइराइड, थाइमॉस और पियूटरी ग्लैण्ड। इन ग्लैण्ड्स के आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने जो-जो प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर बताए हैं वैसे ही प्रभाव हठयोगियों ने भी अष्ट चक्रों की जागृति के बताए हैं।

इन सभी ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को जागृत करने का मुख्य साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का पूर्ण अभ्यासी जिस चक्र को जागृत करना चाहता है उसमें प्राणायाम के द्वारा प्राणों को केन्द्रित कर उस चक्र को जागृत कर लेता है। योगियों की अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के, जिन्हें कि हम सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं, उनके विकसित होने का रहस्य भी प्राणायाम ही है।

मानसिक शक्तियों के विकास का दूसरा साधन चित्त की एकाग्रता है। जिसका जितना चित्त एकाग्र होगा, उसकी उतनी ही मानसिक शक्तियां विकसित होंगी। किन्तु चित्त या मन का सहसा एकाग्र होना बहुत कठिन है। क्योंकि भौतिक जगत में चित्त सबसे अधिक सूक्ष्म तथा चंचल वस्तु है। सूक्ष्म वस्तु का रोकना बहुत कठिन हुआ करता है। यही कारण है कि हम बिना अभ्यास के यदि चाहें तो अपने चित्त को दो-चार मिनट तक भी रोककर एकाग्र नहीं कर सकते। इन चित्तवृत्तियों के रोकने के लिए ही योग का प्रादुर्भाव हुआ है और यह भी ध्रुव सत्य है कि बिना चित्त की एकाग्रता के न तो लौकिक उन्नति ही कर सकते है और न ही पारलौकिक। जिसका जितना अधिक चित्त एकाग्र होगा, उतना उसके चित्त में अधिक बल, पराक्रम तथा नाना प्रकार की दिव्य शक्तियों का विकास होगा। जिनके द्वारा वह संसार के महान् से महान् कार्यों को भी बड़ी सुगमता से पूर्ण कर सकेगा और प्रभु भक्ति तथा आत्म चिन्तन में भी उसका मन भली प्रकार लग सकेगा। विक्षिप्त अर्थात् चंचल मन न तो किसी संसारिक महत्त्वपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही आध्यात्मिक कार्यों में। एकाग्रचित्त जहां उस बड़ी नहर के समान है, जिसके जल के वेग में एक महान् शक्ति निहित है वहाँ चंचल मन उस नहर के नाना दिशाओं में फूटे हुए उन छोटे नालों के समान है, जिन नालों के जल के वेग में नहर के वेग की अपेक्षा शतांश भी सामर्थ्य तथा शक्ति नहीं है। अत: संसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी का यह सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह अपने चित्त को एकाग्र करे। चित्त को शुद्ध तथा एकाग्र करने का मुख्य तथा सरल साधन है प्राणों को अपने वश में करना। प्राणायाम एक प्रकार का मानसिक स्नान है। जैसे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन को शुद्ध और एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की आवश्यकता होती है। प्राण और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, मानो ये दोनों एक ही पेड़ के तने से निकलने वाली दो शाखाएं हैं। यदि प्राण चंचल और अस्थिर हैं, दूसरे शब्दों में हमारे वश में नहीं है तो मन हमारे वश में कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बाह्य जगत में वायु के चलने पर वृक्षादि सब पदार्थ चलने तथा हिलने लगते हैं और वायु के बन्द होने पर वे स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के अन्दर की प्राण वायु जब तक चलायमान रहती है, तब तक इन्द्रियां और मन भी चलायमान, चंचल रहते हैं। प्राणायाम के द्वारा उनके स्थिर हो जाने पर मन भी स्थिर, शांत और एकाग्र हो जाता है। इसलिए मन की चंचलता अर्थात् गति को रोकने के अभिलाषी को पहले प्राणों की गति को रोकना आवश्यक है अर्थात् उसे अपने वश में करना चाहिए। प्राणों के वश में होते ही मन या चित्त स्वयं वश में हो जाता है। इसीलिए चित्त की एकाग्रता का, चित्त की दिव्य शक्तियों के विकास का प्राणायाम ही मुख्य तथा सरल साधन है। इसीलिए योगदर्शन के समाधिपाद में जहां चित्त की एकाग्रता के अनेक साधन लिखे हैं, वहां प्राणायाम को भी चित्त की एकाग्रता का मुख्य साधन बताया है। जैसा कि योगदर्शन में लिखा है-प्रच्छर्दन-विधारणभ्यां वा प्राणस्य अर्थात् प्राणों के बाहर लेने तथा अन्दर रोकने से भी चित्त एकाग्र हो जाता है। अत: चित्त को एकाग्र करने, मानसिक शक्तियों के विकास करने तथा शारीरिक स्वास्थ्य, बल तथा आरोग्यता प्राप्त करने और दीर्घायु के लाभ प्राप्त करने का यदि कोई मुख्य तथा सर्वोत्तम साधन है तो वह प्राणायाम ही है। प्राणायाम मन को शान्त, एकाग्र और बलवान् बनाता है। प्राणायाम के अभ्यास से स्थिर मन और दृढ़ इच्छा शक्ति प्राप्त होती है। इसके अलावा नियमति रूप से प्राणायाम करने से लम्बी आयु प्राप्त होती है। इसके साथ ही यदि आपके शरीर की कोई नाड़ी रूकी हुई हो तो प्राणायाम उसको खोल देता है। प्राणायाम मन की प्रसुप्त दैवी शक्तियों को जागृत करता है। शरीर को शुद्ध पवित्र और बलवान् बनाकर उसे तेजस्वी तथा कान्तिमय बना देता है। शरीर के सब दोषों तथा मलों को प्रदीप्त अग्नि के समान जला देता है और रेचक के द्वारा शरीर के सब विकारों को बाहर फैंक देता है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास करने से सब शारीरिक तथा मानसिक रोगों का क्षय अर्थात् नाश हो जाता है।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वेद-मंत्रों में स्त्रियों का महत्त्व

ले.-श्रीमती पण्डिता ओम्‌वती जी शास्त्री एम. ए.

वेद-मंत्रों का सच्चे हृदय से वास्तविक रूप में मनन करने से ज्ञात होता है कि वेद परमेश्वर की वाणी है। उसको उसने मानवमात्र के कल्याण के लिये सृष्टि के आदि में प्रकाशित किया है। वह सार्वभौम है। सब सत्य विद्याओं के भंडार हैं। पुराण, कुरान, बाइबिल, जिन्दावस्था, धम्मपाद प्रभृति जितने जातिभेद, मतभेद, वर्गभेद तथा व्यक्तिभेद उत्पन्न करने वाले ग्रन्थ हैं, उनमें जो जो सत्य है माननीय है, वह सब वेदोक्त है और जो मनगढ़ंत कपोलकल्पित है, वह उन उन वर्गों तथा व्यक्तियों का रचा हुआ है। अस्तु, जिस प्रकार प्रत्येक मानव के, चाहे वह किसी देश, जाति, वर्ग का हो, दो आँख एक नाक दो कान हाथ पैर मुख अंग प्रत्यंग सब समान होते हैं, समस्त भूमण्डल में जो प्राणी उत्पन्न हुआ है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा, इससे ज्ञात होता है कि सबका आदिमूल रचयिता नियन्ता एक ही जगदीश्वर है, उसी प्रकार संसार में जो सत्य है, वह वेदोक्त है। उसका आदि स्रोत ईश्वर है और वह सब मनुष्यमात्र के हितार्थ है। चाहे वह गोरा हो वा काला हो, पुरुष हो या स्त्री, राजा हो या रंक।

¥ äeçÙ ¤Á»Ì ÷×ð߸ô ÖaêÙèØõ · ðãÙÙaè¥ çÂÌ é ðßÜ ° · ¤ÀôÅâ ð ß»ü¥ aêã ×açÁØõ · ¤è ãèÙ ×ðMâ è â Âçžaâ ×ÛaèÁ aèèãÐç ¤Ì éßaè ß ×ðÁ»Ì ÷×ðÁ ãaþÁ ãaþÁô · éÀUa ˆØ ™aèÙ ãÞßãÙ¥ aêç · ¤èÙ ×ð߸ô â ðãèÙ »ãÞþaeç ¤ØaeãÐ Âaeâ aêØ Î ðaêã ×ðÁô ÙaèÙ»ðÚÙ ãÞâ ×Ì æ ¤aeÃØßãèÙaãÞÙ ° · ¤Â%áÂý aãÞÚØßaßSÍ æ×ð§ ÀUaâ ð SßØçßÚçßßaêãaÙÙaãÞÚØãÙa Õ§â è Î ðèÜØ×aè ™aèÙÚ‰ · ¤èÚça×ØaeãÐ

¥ ae ØüãÙ aêãÚç ¤§â ™aèÙâ êØü · ¤ô¥ ÂÙèÂhë¤â Âçžae ¤è fa鈇ae · ¤ÚÙðßaèÙ ðÖaèÙ ×ð×aèß ÁÙÙè ×çãÜae õ · ðÂý ¥ ˆØÌ ¥ ÙèaèÙ Öaßõ · ¤aeÂýáÖ ç ¤â · ¤èÙ â ðç ¤â Âý¤èÙaèæ aeãô»aeÐÙ Áaèð° â aeÙaèÙ çßÚÜ é, ©Ù· ¤ae¥ ÙâèÚÙ ¤ÚÙðßaèÙæ ©Ù· ¤ôÂÚÙ ¤èÁ èè, »ßaèÚçÙ· ëÙ ÂÎ Î çÙÌ · ¤ÚÙðßaèæÕaèçßßaêÙ ÕaêçßßaêÙÂçÚØQ¤aë Ùâ Âçžae ¤è ¥ Ùç · ¤eÙÜae fačaÌ · ¤ÚÙðßaèæ

उनके सारे शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक अधिकारों को अज्ञान अंधकार में आवृत कर मटियामेट कर उनके साम्राज्य को उलटने वाला कौन राक्षस कृतघ्न माता के उदर से उत्पन्न हुआ होगा, जिसने ''स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्'' की प्रथा चलाई होगी। हे भगवन्! एक प्रथा ही क्यों सहस्रों प्रकार से भारतीय महिलाएँ, माताएँ, भगिनियां, पत्नियाँ कन्याएँ ठुकराई जाती थीं और मूर्खता के कारण पग पग पर ठोकरें खाती थीं। पुरुषों की केलिक्रीड़ा-जन्तु बनकर पशुओं से भी तुच्छ स्थान उनका था और है। उनको अशिक्षित रखने के लिये कठिन से कठिन नियम थे, जिससे कहीं वे शिक्षारूपी ज्योति की चमक न देख लें।

किन्तु इस अद्यतनीय युग में एक महान् ज्योति ऋषि दयानन्द के रूप में आविर्भूत हुई, जिसने पुनः वेदार्थ दीपक प्रज्वलित कर संसार को श्रेय मार्ग दिखा दिया और भारतीय नारीमंडल को फिर से साम्राज्ञी पद पर बिठा गये। कितनी वेदना होती है, जब महिलाओं के मुख से ऋषि के विषय में कोई संदिग्ध कल्पना प्रकाशित हो।

तनिक वेद-मंत्रों का यदा कदा पारायण करके देखें, कैसे कैसे रत्न हैं। नारी ही माता बनती है और वहाँ माता का सर्वोत्तम स्थान है। कितनी प्रशंसा है। ऋग्वेद में मंत्र है:-

कुमारं माता युवतिः समुब्धं
गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकसमस्य नमिनज्जनासः पुनः
पश्यन्ति निहतमरतौ।।
ऋ० ५।२।१

युवती माता ही बड़े कष्ट सहन कर अपने गुफारूपी गर्भ में बालक को धारण करती है। अपने तुल्य पिता को भी यह कष्ट नहीं होने देती, न उसका बल ही क्षीण होने देती है। अत एव विद्वान् पुरुष माता को प्रथम स्थान देते हैं। हम भगवान् की वन्दना में भी उन्हें माता कहकर पुकारते हैं ''त्वमेव माता च पिता त्वमेव'' वेद को अपना अपना रटने वाले भारतीयो देखो! विवाह गुड्डे गुड्डी का खेल नहीं है। देखिये वेदमंत्र क्या आदेश देते हैं:-''ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'' वहाँ तो बाल्यकाल में विवाह का विधान ही नहीं, न जाने यह बला कहाँ से भारतीयों को चिपटी! ऋग्वेद का मंत्र कन्याओं को अपने आप वर चुनने का अधिकार देता है:-

कियती योषा मर्य्यतो वधूयोः
परिप्रीता पन्यसा वार्य्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं
सा मित्रं वनुते जनेचित्
ऋ० १०।२७।१२।।

कितनी ही विवाह की कामना वाली सुन्दरी सुरूपा युवतियाँ पुरुषों की योग्यता को परख कर जनसमुदाय में से स्वयं पतिवरण कर लेती हैं। देखिये! नारियों को वेद ने कितनी स्वतंत्रता दी है। उधर माता पिता की आज्ञा में चलने का कठिन आदेश भी अथर्ववेद डंके की चोट से घोषित करता है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत् भद्रया।।

यह है वैदिक स्वर्ग की झलक। पुत्र पिता की आज्ञा में चलने वाला माता के साथ समान मन वाला हो। पत्नी पति से सदा मीठी वाणी सांत्वना प्रदान करने वाली बोले। न भाई भाई से द्वेष करे, न बहिन-बहिन से। सब हिलमिल कर एक दूसरे की सहायता करते हुये प्रेमपूर्वक नियमपालन करते हुए मीठी वाणी बोलकर परिवार में रहें। पतिगृह में तो उसका स्थान आदर सत्कार की चरम सीमा तक पहुँच जाता है। वहां महर्षि और साम्राज्ञी शब्दों द्वारा उसका आह्‌वान होता है।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा विराजत।

हे अग्ने परमात्मन्! आपकी कृपा से यह नारी पति को प्राप्त करे। समस्त संसार को शान्ति प्रदान करने वाले सोमरूप राजा ईश्वर इसे सौभाग्यशालिनी बनावे। पतिगृह में जाकर पुत्रों को पैदा करती हुई सदा सौभाग्यवती रहे। और महारानी के पद पर सुशोभित हो। केवल पति पर ही नारी का अधिकार नहीं; अपितु पतिकुल के समग्र सम्बन्धियों तथा कुटुम्बियों की रानी बनने का अधिकार स्त्रियों को वेदमंत्र देते हैं।

साम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु साम्राज्युत देवृषु।
ननान्दुः साम्राज्ञ्येधि साम्राज्युत श्वश्र्वाः।।

सास, ससुर, देवर, जेठ, नंद इत्यादि सब कुटुम्बियों के हृदय की रानी तू बन, ऐसा वधू को आदेश है।

एक ओर वेद का महत्त्वपूर्ण ऊँचा आदर्श स्थान, दूसरी ओर वैदिक सभ्यता के विपरीत पौराणिक युग में नारी की यह हीनता। ''शूद्र गंवार ढोल पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'' इत्यादि किंवदंतियाँ मूर्ख जनसमुदाय में प्रचलित की गई। बौद्धकाल में भी स्त्रियों को हीन समझ कर नीचे ही गिराया, उसे ऊँचे सिंहासन से उतार कर दासी, पैर की जूती के सदृश स्थान दिया। सब प्रकार के प्रतिबन्ध बन्धन रचे ''न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति'' गढ़कर उनको बेडियों से जकड़ दिया गया। यहां तक कि पढ़ने लिखने से विधवा हो जाती हैं, यह प्रचार हो गया। पति का उच्छिष्ट भोजन, पैर धो-धो कर पीना, एक कुलीन के साथ कितनी कितनी कन्याए व्याह देनी, सिर हिलते बुड्ढे के साथ युवा कन्याएं अर्पण करना, पैदा होते ही गोद में लेकर कन्यादान करना। और एक महान् अंधेर था जीती स्त्री को पति के शव के साथ जला देना। दुःख के आवेग में और इस कार्य को अति पवित्र मानना, जो अंग्रेजों के आने पर लार्ड विलियम बैण्टिङ्ग के समय में बन्द की गई। यह प्रथा कितनी अवैदिक और हानिकर थी। प्रथम तो भगवान् का दिया हुआ जीवन स्वयं नष्ट करना आत्म हत्यारूप महापातक, दूसरा एक बार जीवन नष्ट करना कदाचित् उतना कष्टदायी नहीं, जितना सारा जीवन स्मृतिरूपी हृदय में प्रज्वलित अग्नि

(शेष पृष्ठ 6 पर)

शिक्षा

ले.-श्री नरेन्द्र आहूजा

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली देश के भविष्य निर्माण के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती है, परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा अक्षरज्ञान का पर्यायवाची बनकर रह गई है। शिक्षित होने से अभिप्राय साक्षर होना, अक्षरज्ञान होना, भाषा को लिख पढ़ लेना, सामान्य शिक्षा दसवीं या बारहवीं कक्षा तक विभिन्न विषयों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना और इससे अधिक विज्ञान, वाणिज्य, कला, प्रबंधन, अभियांत्रिकी आदि विषयों में स्नातक हो जाना और उच्चतर शिक्षा में किसी दिए गए विषय पर सामान्य से अधिक जानकारी पा लेना स्नातकोत्तर शिक्षा की श्रेणी में आते हैं। परन्तु इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली से हम क्लर्क, मैनेजर, डाक्टर, इंजीनियर आदि तो बना रहे हैं परन्तु क्या हम अच्छे मनुष्य बना पा रहे हैं?

एक अच्छा डाक्टर यदि एक अच्छा मनुष्य नहीं है, उसे शिक्षा और विद्या की सही परिभाषा नहीं पता, शिक्षा और विद्या का ज्ञान नहीं है तो वह अच्छा डाक्टर अपने चिकित्सा ज्ञान का अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए प्रयोग करता हुआ अवैध रूप से मानवीय अंगों का काला कारोबार, किडनी चोरी एवं प्रत्यारोपण करेगा, अल्ट्रासाउंड जैसी उच्च तकनीक का प्रयोग चंद रुपयों के लालच में भ्रूण लिंग जाँच वा कन्याभ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए करेगा, डेंगू जैसी बीमारियों का डर दिखाकर मरीजों का शोषण करेगा, प्रत्येक दवा या जाँच में कमीशन लेगा। इसीलिए एक अच्छे डाक्टर का एक अच्छा इंसान होना अत्यंत आवश्यक है। एक अच्छा डाक्टर यदि एक अच्छा मनुष्य नहीं है तो वह तुच्छ स्वार्थ सिद्धि वा लालच के वशीभूत अपने ज्ञान का दुरुपयोग करते हुए समाज पर अभिशाप बन सकता है। ठीक इसी प्रकार एक इंजीनियर वा कम्प्यूटर ज्ञान रखने वाला आतंकवादी गतिविधियों में शामिल होकर विश्व को विनाश या युद्ध के कगार पर ले जा सकता है। अच्छा वाणिज्य कला स्नातक यदि अच्छा मनुष्य नहीं है तो काले धन को सफेद बनाकर अर्थव्यवस्था की जड़ें खोद सकता है। ठीक इसी प्रकार एक अच्छा वकील यदि संवेदनशील मनुष्य नहीं है तो अपराधियों, आतंकियों, दुराचारियों को कानूनी प्रक्रियाओं में उलझाकर सजा से बचाते हुए अभय देकर समाज में अपराध को बढ़ावा दे सकता है।

वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था की दुर्दशा के लिए इस शिक्षा प्रणाली के इतिहास को जानना अत्यंत आवश्यक है। अंग्रेजी दासता काल में हम भारतीयों को अपनी संस्कृति की जड़ों से काटने, सदा सर्वदा के लिए मानसिक गुलाम बनाए रखने के लिए बहुत शातिर तरीके से लार्ड मैकाले ने हमारी प्राचीन गुरूकुलीय शिक्षा प्रणाली को समाप्त करते हुए गुलामी की प्रतीक इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली को लागू किया। कोई भी वृक्ष कितना भी बड़ा और पुराना क्यों न हो यदि अपनी जड़ों से कट जाता है तो सूखकर ठूँठ बनकर गिर पड़ता है। विकास की झूठी चकाचौंध से सम्मोहित कर विनाश की ओर धकेलते आध्यात्मिक विश्व गुरू भारत की सर्वप्राचीन महानतम वैदिक संस्कृति को नष्ट करने के प्रयोजन से एक सोची समझी साजिश के तहत अंग्रेजों ने लार्ड मैकाले को वर्तमान शिक्षा प्रणाली को शुरू किया था। स्वतंत्रता के उपरांत देश के नीति नियंताओं की मानसिक गुलामी का परिचायक ही था कि मानसिक गुलामी दिवालियेपन की प्रतीक मैकाले की शिक्षा प्रणाली को इस देश की शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया गया। जिसके परिणाम आज हम देख रहे हैं कि शिक्षा मनुष्य का निर्माण करने में सर्वथा असमर्थ रही है।

इस निरन्तर भयावह होती स्थिति का समाधान यदि हम ढूँढ़ना चाहते हैं तो देव दयानन्द के वैदिक साहित्य में वर्तमान काल की प्रत्येक समस्या के समाधान के साथ इस शिक्षा प्रणाली का समाधान भी उपलब्ध है। इसके लिए हमें क्रान्तदर्शी देव दयानन्द द्वारा दी गई शिक्षा और विद्या की व्यापक परिभाषाओं को समझना, जानना और मानना होगा। गुलामी के उस समय में जब शिक्षा एक जाति विशेष अर्थात् ब्राह्मणों की बपौती समझी जाती थी और समाज के बहुसंख्यकों विशेषतया नारियों एवं दलितों के लिए शिक्षा पाना वर्जित था। उस समय तमाम सामाजिक विरोधों को दरकिनार करते हुए शिक्षा को सबके लिए अनिवार्य बताते हुए समान रूप से उपलब्ध करने की वकालत करते हुए व्यवहारभानु में देव दयानन्द लिखते हैं **''सभी मनुष्यों को उचित है कि आप अपने पुत्र पुत्री, इष्ट मित्रों, अड़ोसी-पड़ोसी, मालिक-नौकर आदि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें''** अर्थात् शिक्षा का फल सुख और आनन्द के साथ व्यक्ति परिवार समाज और देश की उन्नति है। बिना शिक्षा मनुष्य पशु समान है। आर्योद्देश्यरत्नमाला में मनुष्य को परिभाषित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं **''जो विचार मनन के बिना किसी काम को न करे, उसका नाम मनुष्य है''** अर्थात मननशील, विचारशील होना मनुष्यता का आवश्यकता एवं अनिवार्य गुण है। विचारशील होने के लिए व्यक्ति का सुशिक्षित तथा विद्या युक्त होना अत्यंत आवश्यक है। बिना शिक्षा और विद्या के व्यक्ति सही दिशा अर्थात् परोपकार आदि में प्रवृत नहीं हो सकता। देव दयानन्द स्वमन्तव्यामंतव्य प्रकाश में मनुष्य के लक्षण बताते हुए लिखते हैं **''वह जो मननशील विचारशील सबसे स्वात्मवत यथायोग्य व्यवहार करता हुआ निर्बल धर्मात्माओं को संरक्षण, दुष्टों को दंड देता हुआ सत्याचरण करता है उसे मनुष्य कहते हैं।''** यहाँ भी विचारशील मननशील होना मनुष्य होने की अनिवार्यता तथा मननशील होने के लिए सुशिक्षित विद्या युक्त होना आवश्यक है इससे स्पष्ट होता है कि कोई भी व्यक्ति सुशिक्षित एवं विद्यायुक्त हुए बिना मनुष्य नहीं बन सकता।

व्यवहारभानु में शिक्षा को परिभाषित करते हुए देव दयानन्द लिखते हैं **''जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति, और अविद्यादि दोषों को छोड़कर सदा आनन्दित हो सकें, वह शिक्षा कहलाती है''**। इसी क्रम में स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश में शिक्षा के बारे में लिखते हैं **''जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की वृद्धि और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।''** इस प्रकार विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश ही व्यापक रूप से शिक्षा कहलाती है जिसे देव दयानन्द ने आर्य समाज का नियम बनाया।

इसी प्रकार विद्या को परिभाषित करते हुए देव दयानन्द व्यवहारभानु में लिखते हैं-**''जिससे पदार्थ को यथावत जानकर न्याय युक्त कर्म व परोपकार किए जावें वह विद्या और किसी पदार्थ का यथावत ज्ञान ना होकर अन्याय रूप कर्म किए जायें वह अविद्या कहलाती है।''** देव दयानन्द ने पदार्थों के यथारूप ज्ञान तक विद्या को सीमित नहीं किया अपितु यथा स्वरूप ज्ञान पाकर उससे न्यायोचित कर्म करते हुए परोपकार करने की दिशा देकर मनुष्य बनने की प्रेरणा दी। विद्या को आर्योद्देश्यरत्नमाला में परिभाषित करते हुए लिखा **''जिससे ईश्वर से ले के पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम विद्या है और जो विद्या से विपरीत भ्रम अन्धकार और अज्ञानरूप है उसे अविद्या कहते हैं।''**

विद्या और अविद्या दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। प्रत्येक मनुष्य को दोनों को समान रूप से जानना अत्यंत आवश्यक है। जैसे अभाव को जाने बिना भाव को जानना असंभव है उसी प्रकार अविद्या को जाने बिना विद्या का ज्ञान नहीं हो सकता। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के 14वें मंत्र में इसे स्पष्ट किया गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्त द्वेदोभय सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

ऋण मुक्त बनो

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

मनुष्य मात्र देव ऋण, पितृ ऋण और आचार्य ऋण का ऋणी तो न चाहते हुए भी बनता ही है। उन ऋणों से मुक्त होने के लिये भी मनुष्य को पर्याप्त प्रयत्न करना पड़ता है। देव ऋण यज्ञ के द्वारा पितृ ऋण श्रेष्ठ संतान का निर्माण करके तथा आचार्य ऋण उनके द्वारा दी गई शिक्षा के अनुरूप आचरण करके उतारा जाता है। परंतु जीवन में ऐसे अवसर भी कभी कभी आ जाते हैं जब मनुष्य को अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किसी व्यक्ति से अर्थ (धन) के रूप में ऋण लिया जाता है। वास्तव में ऋण लेते समय ऋण प्राप्त करने वाला व्यक्ति ऋणदाता के सामने अपने को हीन अनुभव करता है। उसके अहम् पर गहरी चोट लगती है। अपनी हीन भावना से उबरने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि उस ऋण से शीघ्रतीशीघ्र उऋण हो जावे। ऐसा न होने पर स्वयं उस व्यक्ति को ही नहीं वरन् परिवार को भी समाज में लज्जित होना पड़ता है।

अथर्ववेद में इस विषय पर जो चिंतन हुआ है हम इस लेख में उसी पर विचार कर रहे है।

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्विषाणि यदक्षवृत्तमनु दंत्तं न एतत्।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य अधिरज्जुरायत।। अथर्व 6.118.2

अर्थ-(उग्रंपश्ये) हे तीव्र दृष्टि वाली (राष्ट्रभृत्) हे राष्ट्र को पालने वाली। (सूर्य और पृथ्वी) (किल्विषाणि) हमारे अनेक पाप है। (यत्) जो (अक्षवृत्तम्) इन्द्रियो का सदाचार है (एतत्) वह (नः) हमें (अनु) अनुग्रह करके (दत्तम) तुम दोनों दान करो। (ऋणात्) ऋणो के (ऋणम्) पीछे ऋण को (एर्त्समानः) लगातार बढ़ाने की इच्छा करता हुआ (अधिरज्भुः) उधार देने वाला (यमस्य) न्यायाधीश के (लोके) समाज में (नः) हमको (आ) आकर (न) न (अयत्) प्राप्त हो।

भावार्थ-मनुष्य को इस संसार में रहते हुए इन्द्रियों को सदाचार में ही लगाना चाहिए। हमें हर प्रकार के पाप से अपने आप को बचाना चाहिए। हमें ऋण लेकर उसे ब्याज सहित ठीक समय पर ऋणदाता को चुका देना चाहिए। ऐसा न होने पर ऋणदाता अपना ऋण प्राप्त करने के लिये न्यायालय का आश्रय ले सकता है। न्यायालय में मामला जाने पर ऋणी व्यक्ति को लज्जित होना पड़ता है। समाज में उसका सम्मान जाता रहता है। इसलिये एक कवि ने कहा है यदि यात्रा करते हुए नाव में पानी भरने लग जावे तो सबको मिलकर उसे दोनों हाथों से उलीचकर बाहर फेंक देना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने पर नाव डूब सकती है। और सभी नाव पर सवार व्यक्तियों के प्राण जा सकते है। इसी प्रकार यदि परिवार पर कोई ऋण चढ़ा हुआ है तो उसे भी शीघ्रतीशीघ्र अदा कर देना चाहिए। अन्यथा परिवार का सम्मान जाता रहेगा और परिवार के सभी व्यक्तियों को समाज के समाने लज्जित होकर सिर झुकाकर चलना पड़ेगा। ऋण लेने व्यभिचार करने तथा अनुचित मांगने से मनुष्य की प्रशंसा में बट्टा लगता है।

यस्या ऋण यस्य जायामुषेमिय याचमानो अभ्येभि देवाः।
ते वाचं वादि षुर्मोन्तरां मद्देदयत्नी अप्सरसा दधीतम्।। अथर्व 6.118.2

अर्थ-(देवाः) हे विद्वानों (यस्मै ऋणम्) जिसका मुझ पर ऋण है (यस्य) जिसकी (जायाम) स्त्री के पास (उपैमि) मैं जाऊं अथवा (याचमानः) अनुचित मांगता हुआ मैं (यम) जिसके पास (अभ्यैभि) पहुंचू (ते) वे लोग (मत्) मुझसे (उत्तराम वाचम्) बढ़ कर बात (मावादिषु) न बोलें। (देवपत्नी) हे दिव्य पदार्थों की रक्षिका (अप्सरसौ) आकाश में चलने वाली सूर्य और पृथ्वी। (अधीतम्) यह बात स्मरण रखों।

मनुष्य को अपने द्वारा लिया गया ऋण तो समय पर अदा करना ही है साथ ही यदि माता पिता ने भी कोई ऋण लिया हो तो उसे भी समय पर चुकाना आवश्यक है।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्य-दास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।

अथर्व. 6.119.1

अर्थ-(अग्ने) हे सर्वश्व परमेश्वर। (अदीव्यन्) व्यवहार न करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (ऋणम्) ऋण (कृणोमि) करूं। (उत्त) अथवा (अदारस्यन्) चुकाना न चाहता हुआ (संगृणामि) प्रण करूं (वैश्वानर) सब नरों का स्वामी (अधिपाः) अधिक पालन करने वाला (वसिष्ठ) अति उत्तम परमेश्वर (इत्) ही (नः) हमें (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) लोक (समाज) में (उन्नयाति) ऊंचा चढ़ावें।

भावार्थ-मनुष्य जो भी ऋण लेवे अथवा प्रण करे उसे परमेश्वर को साक्षी मान कर पूरा करे कभी भी अपनी वाणी को मिथ्या न होने दे। इससे उसका समाज में सम्मान बढ़ेगा।

वैश्वानराय प्रति वेदयाग्मि यद्यृणं संगसे देवतासु।
स एतान् पाशन्विस्वृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह संभवेम।।

अथर्व. 6.119.2

अर्थ-(वैश्वनराय) सब नरों के हितकारी परमेश्वर से (प्रति) प्रत्यक्ष (वेदयामि) निवेदन करता हूं कि (देवतासु) विद्वानों के विषय (मेरी ओर से) (यत्) जो (ऋणम्) ऋण और (संगरः प्रण है। (सः) वह परमेश्वर (एतान्) इन सर्वान सब (पाशाम्) बंधनों को (विचृतम) खोल देना (वेद) जानता है (अथ) इसलिये (पक्वेन सह) उस पक्के (दृढ़) स्वभाव वाले परमेश्वर के साथ (सम्भवेम) हम बने रहें।

भावार्थ-परमेश्वर से निवेदन करता हूं कि विद्वानों के प्रति जो मेरा ऋण और प्रण है उसे पूरा करने में मेरी सहायता करे। हम दृढ़ स्वभाव वाले परमात्मा के आश्रय में बने रहे।

अगले मंत्र में कहा गया है कि व्यक्ति को सदैव अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करना चाहिए। व्यक्ति को अनजान बन कर किसी भी अनुचित वस्तु की याचना नहीं करनी चाहिए।

पृष्ठ 5 का शेष-शिक्षा

अर्थात् जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार विद्या और अविद्या दोनों पूरक हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम देव दयानन्द द्वारा दी गई शिक्षा विद्या और अविद्या की परिभाषाओं को जान मान कर अपनी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करें और शिक्षा के केवल अक्षर ज्ञान के संकुचित दायरे को व्यापक करते हुए समस्त पदार्थों के यथास्वरूप ज्ञान, न्याय, कर्म व परोपकार के लिए उसके उपयोग और अन्ततः विद्या द्वारा मोक्ष प्राप्ति जो मानव जीवन का लक्ष्य है को प्राप्त कर सकते हैं। केवल तभी हम अच्छे डाक्टर, इंजीनियर, मैनेजर आदि को अच्छा मनुष्य बना पायेंगे। शायद केवल तभी देव दयानन्द द्वारा दिए आर्य समाज के नियम अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि का पालन कर पायेंगे। हमारी शिक्षा प्रणाली हमारी पुरातन सनातन वैदिक संस्कृति की जड़ों से जुड़ी रहकर ही अधिकतम विस्तार पाये तभी सार्थक होगी और केवल तभी हम समस्त समाज को सुशिक्षित विद्यायुक्त मननशील मनुष्य के रूप में परोपकार करते देख सकते हैं।

पृष्ठ 4 का शेष-वेद-मंत्रों में स्त्रियों का महत्त्व

में प्रतिपल भस्म होते रहना अथवा किसी परोपकार के कार्य में अपना सारा तन मन अर्पण कर देना, जिससे पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित हो जाए। फिर वेद में तो कहीं ऐसी आज्ञा नहीं मिलती कि हे नारी! तू इस मृत पति के साथ अपने जीते जागते शरीर को जलादे, अग्निसात् कर दे। कोई ऐसा स्वर्ग व बहिश्त नहीं, जहां मृत जीव आत्मा मिल जायेगे। नश्वर शरीर तो आत्मा के निकलते ही निकम्मा हो गया, जला दिया गया, गाड़ दिया गया वा फेंक दिया गया, तब मिलना किससे आत्मा न स्त्री न पुरुष न कुमार न कुमारी न हिन्दू न मुसलमान न ईसाई न अंग्रेज। वहां तो गीता का उपदेश है, 'वासंसि जीर्णानि' वाला सिद्धान्त है। अस्तु, यह सब मन गढंत मूर्खों की चलाई हुई बातें हैं। उल्टा मंत्र तो पति के रहने पर सान्त्वना के रूप में आदेश देता है कि-

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्ताग्रभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संवभूथ।।

हे नारी! शोक छोड़कर उठ, इस मृत पति को आशा छोड़ दे। इस संसार में जीते जागते मनुष्यों में से और चुन ले। तेरा पाणिग्रहण करने वाला यही तेरा पति होगा और उत्पन्न हुई सन्तान उसकी और तुम्हारी होगी।

पृष्ठ 2 का शेष-अब मैं कौन उपाय करूं?

ध्यान की दूसरी परिपक्व अवस्था में अहंकार का साक्षात्कार होता है परन्तु यह अहंकार भी तो भौतिक वस्तु है- अतएव इस अहंकार से भी अन्तरमुख होकर ध्यान की तीसरी परिपक्व अवस्था में अस्मिता का साक्षात्कार होता है। यह अस्मिता वही महतत्व ही तो है परन्तु है तो भौतिक ही। अब इस अस्मिता से भी अन्तरमुख होकर ध्यान की चौथी परिपक्व अवस्था में 'प्रकृति' का साक्षात्कार होता हैं-हां उस प्रकृति का जो तीनों गुणों की सम अवस्था वाली है, चाहे यह अत्यन्त सूक्ष्म और अनिर्वचनीय ही है परन्तु है तो भौतिक ही, इसलिये इस प्रकृति को भी भूल कर ध्यान की जब पांचवी परिपक्व अवस्था आती है तब आत्मा का साक्षात्कार होता है। अब साधक ने अनात्म वस्तुओं के अतिरिक्त आधार तत्त्व भी देख लिया, वह दोनों के भेद को जान गया उसे विवेकख्याति का स्थान प्राप्त हो गया, जहां पहुंच कर अविद्या अज्ञान का नाश हो जाता है।

जब आत्म-दर्शन पाकर अविद्या का अन्धकार दूर हो गया तो अब वेद मंत्र में बतलाई अगली तीन बातें स्वयमेव हट जाती हैं-साधक व्यर्थ का वाद विवाद क्यों करेगा! अब तो कुछ कहने सुनने के लिये शेष रहा ही नहीं। साधक शारीरिक रक्षा के लिये-इस अन्नमय कोश तथा प्राणमय कोश के लिये केवल आवश्यक सामग्री तो जुटा देगा इससे अधिक नहीं, और यह सामग्री भी इसीलिये एकत्र की जाएगी ताकि 'इमम् अमृतं सुखं रथं'-इस अमृत तक पहुंचने में सहायक सुखप्रद रथ पर-स्थित होकर परम धाम को पहुंच सके। तब वह पेटू नहीं बनेगा, इन्द्रियों ही को सन्तुष्ट करने और इन्हीं की पूजा करने वाला विरोचन बुद्धि नहीं बनेगा, न ही वह कोरा कीर्तन करने वाला केवल दिखाने मात्र के लिये भजन करने वाला भी नहीं होगा, क्योंकि वह उस अन्दर वाले अपने प्यारे से मिलने के अलौकिक स्वाद को चख चुका है।

मानव यदि चाहता है कि वह इस सागर से पार हो जाये तो उसे (१) विवेकख्याति द्वारा अविद्या-अज्ञान-दूर करना होगा, (२) बक-बक झक-झक से बचना होगा (हो सकता है मौन साधना का नियम इसीलिये बनाया गया हो) (३) केवल शरीर रक्षार्थ खान पान करते हुए इन्द्रियों के पीछे पागल नहीं बनना होगा। और (४) हृदय में उसी प्यारे को बिठला कर उस का मानसिक जप तथा उस के गुणों का चिन्तन करना होगा, केवल कोरा कीर्तन नहीं। इन के विपरीत चलने वाले आनन्द धाम तक पहुंच नहीं पायेंगे और दु:ख सागर की तरंगों में ऊपर नीचे जन्म मरण के चक्र में उलझे रहेंगे-वेद भगवान् ने यह बात भी छिपाकर नहीं रखी कि कौन लोग उसे पाते है-सामवेद के ३८वें मंत्र में स्पष्ट आदेश है:-

त्वै अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारों ये मधवानो जनानामूर्व दयन्त गोनाम्।।

"हे सब जीवों के हितकारी अग्ने प्रभु। तुझे प्रिय हों-कौन? (१) (सूरयः) ज्ञानी-विद्वान्-स्वाध्यायशील लोग, (२) (यन्तारः) मन का वशीकार करने वाले, (३) (ये जनानां मधव, नः) जो मनुष्यों में इन्द्र बनते हैं। (४) (गोनां ऊर्व दयन्ते) इन्द्रियों के समूह को सुरक्षित करते हैं।"

ऊपर ऋग्वेद के मंत्र में वह बतलाया था कि चार अवगुण जिनके अन्दर हों वह परमात्मा का दर्शन पा नहीं सकते और सामवेद के इस मंत्र में वह चार गुण बतलाये हैं जिनके द्वारा साधक परमात्मा का प्यारा बन कर उसी का हो जाता है। इस मंत्र में तीसरा गुण इन्द्र बनना बतलाया है, इन्द्र की डिग्री उसको मिलती है जो हर प्रकार के असुरों पर विजय प्राप्त कर ले, अर्थात् 'जन्म असुर' हर समय खाने ही की सोचते रहना, जैसे आजकल यह वृत्ति बन रही है कि "खाओ पीओ और ऐश उड़ाओ" या रोटी ही रोटी के नारे लगाते रहना। 'बल असुर'-निर्बलों पर अत्याचार करने की भावना। क्रोध तथा अभिमान में फूले रहना इस प्रकार की सारी वृत्तियां आसुरी वृत्तियां है, इन को जो जीत लेता है, वह इन्द्र है। प्रभुप्रिय बनने के लिये इन्द्र बनना आवश्यक है। ज्ञान के बिना तो एक भी पग प्रभु-दर्शन के मार्ग पर उठाया नहीं जा सकता, परन्तु कोरा ज्ञान भी कुछ नहीं, जब तक साधक का अधिकार मन तथा इन्द्रियों पर नहीं हो जाता। परमात्मा का निवास होता ही उस हृदय में है, जो वासनाओं और अज्ञान के अन्धकार से खाली हो। सामवेद के पहले ही मंत्र में बतला दिया है-

नि होता सत्सि बर्हिषि।

हृदय मन्दिर को जब सर्वथा निर्मल बना लिया जायेगा तभी तो वह परम ज्योति वहां जागेगी। मन को रखूँ मलिन, अन्तःकरण में मल, विक्षेप, तथा आवरण के दोष विद्यमान रहें और फिर भी प्रभु-दर्शन न होने की शिकायत होती रहे तो यह उचित न होगा। मैं तो माया का चेरा बना रहूँ-पूजा करूँ प्रकृति की। विकारों और भोगों के अम्बार एकत्र करता रहूँ। और चाहूँ पहुंचना उस परम उज्वल, निर्विकार, माया से परे, आनन्द धाम के स्वामी के पास; कैसे हो सकेगा यह? हां। यदि सामवेद के आदेशानुसार चार गुण भक्त के हृदय को रंग दें और हृदय में प्रभु ही प्रभु विराजमान हो जाये तो फिर यह संसार जो दु:खों का सागर प्रतीत होता है, सुख सागर दृष्टिगोचर होने लगेगा, क्योंकि अन्तःकरण आनन्दस्वरूप भगवान् के प्रेम से भरपूर हो चुका है। उर्दू के एक कवि ने ठीक कहा है-

उलफत में बराबर है। वफ़ा हो कि जफा हो।
हर चीज़ में है लज्ज़त, गर दिल में मजा हो।।

फिर दु:ख दु:ख ही नहीं रहता, वह तो परम प्यारे का प्रेम कटाक्ष हो जाता है।

डूबब जर्व न बात कछु तैं जैं लागि लाग।
जहाँ प्रीति काची नहीं, काह पानी काह आग।।

ऐसी मस्ती आते ही प्रभु प्यारे के ओ३म् नाम की रट हृदय में लग जाती है, एक एक प्राण से उसी की ध्वनि आने लगती है, सचमुच प्रभु-नाम एक ऐसा नशा है जो तीव्र ही होता जाता है-

"सुरा त्वमसि शुष्मिणी।।
(यजु० १९-७)

अब वह अवस्था आने लगती है जब साधक अनुभव करने लगता है कि वह इस संसार सागर से पार होने के लिये एक दिव्य नय्या पर चढ़ बैठा है:-

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।
(ऋ १०।६३।१०)

दिव्य नौका पर चढ़ बैठो-यह नैय्या रक्षा करने वाली, विस्तृत-विशाल है, अपराध रहित है, उत्तम गति वाली और उत्तम चप्पू हैं इस के। यह दिव्य नौका परमात्मा का दृढ़ विश्वास ही होता है। इसी नौका पर बैठ कर उस प्रभु के पवित्र ओ३म् नाम की तीव्र बलकारी सुरा पीते चलो, और मन्द-मन्द चलने वाले वायु से नीले नीले आकाश से, सर्वत्र व्यापक अग्नि से कहो:-

ओ३म् उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय। अग्र उन्मादया त्वमसौ मामनुशोचतु।
(अथर्व ६-१३०-४)

(मरुतः) प्राणो-वायुओ! (उत् मादयत) मुझे मस्ताना बना दो (अन्तरिक्ष उत् मादय) आकाश! मुझे बेसुध कर दे, (अग्ने त्वं उत् मादव) अग्ने! तू भी मुझे प्रेमोन्मत्त कर दे (असौ) वह भी (मां अनुशोचतु) मेरे लिये विकल हो जाए।"

ठीक ही तो है, जब साधक उसके लिये तड़प उठा है तो वह भी तो विकल हो-कवि ने खूब कहा है:-

उलफ़त का तब मज़ा है दोनों हों बेक़रार।
दोनों तरफ़ हो आग बराबर लगी हुई।।

भक्त या साधक को ऐसा कहने का अधिकार हो जाता है। अब संसार के दु:ख उसके लिये प्रयोगशाला अनुसन्धान हो जाते हैं और साधक दुनिया में, शरीर रहता हुआ भी अपने आप को इस से सर्वथा पृथक् समान कर न दु:खी होता है, न सन्तप्त। यही उपाय है भवसागर से पार होने का।

आर्य समाज मंदिर फरीदकोट में आर्य समाज स्थापना दिवस धूमधाम से मनाया

आर्य समाज मंदिर फरीदकोट में आर्य समाज स्थापना दिवस एवं नव सम्वत्सर समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री सतीश शर्मा जी ध्वजारोहण करते हुये जबकि चित्र दो में उपस्थित आर्य जन। चित्र तीन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक आचार्य नारायण सिंह जी प्रवचन करते हुये।

आर्य समाज मंदिर फरीदकोट में दिनांक 26 मार्च 2023 दिन रविवार को आर्य समाज स्थापना दिवस एवं नव सम्वत्सर महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। प्रात:काल यज्ञ ब्रह्मा आर्य समाज के पुरोहित श्री कमलेश शास्त्री ने बड़ी श्रद्धा से वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ यज्ञ सम्पन्न करवाया। आर्य समाज मंदिर फरीदकोट के मंत्री श्री नरेश देवगण एवं कोषाध्यक्ष श्री प्रमोद गोयल जी सपत्नीक यज्ञ के यजमान बने। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक आचार्य नारायण सिंह जी ने यजमानों को आशीर्वाद प्रदान किया। यज्ञ के पश्चात आर्य समाज के प्रधान श्री सतीश शर्मा जी एवं आचार्य नारायण सिंह जी ने ओ३म ध्वज फहराया। इस अवसर पर आर्य समाज के सभी सदस्यों ने भाग लिया। इसके पश्चात मुख्य कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम सुन्दर भजनों की प्रस्तुति कु. सुमेधा जी द्वारा दी गई। सभी सदस्य भजनों से मंत्रमुग्ध हो गये।

इसके पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री नारायण सिंह जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि आर्य समाज की स्थापना करके महर्षि दयानन्द सरस्वती जी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहां पर किसी के साथ कोई भेदभाव न हो। जाति, मत, पन्थ और सम्प्रदाय की तरह कोई व्यवहार न करे। सभी समान विचार वाले होकर सबके कल्याण के लिए मिलकर कार्य करें। समान विचार वाले होकर राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्य करें। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने द्वारा स्थापित समाज को आर्य समाज का नाम दिया। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ होता है अर्थात् जिनके विचार शुद्ध, आचार शुद्ध, व्यवहार और खान-पान शुद्ध होता है वही व्यक्ति आर्य कहलाने का अधिकारी है। उन्होंने कहा कि आर्य समाज के सिद्धान्त और नियम सार्वभौम हैं। आर्य समाज के नियम वेदों पर आधारित हैं। इन नियमों में किसी एक की उन्नति नहीं अपितु सबकी उन्नति की कामना की जाती है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के नौवें नियम में लिखा कि प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का उद्देश्य सारे संसार का कल्याण करना था। वे किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं अपितु सर्वे भवन्तु सुखिन: की भावना को लेकर कार्य करते रहे। यही कारण है कि आर्य समाज ने सभी क्षेत्रों में कार्य किया। आर्य समाज किसी के दबाव में नहीं आया और गलत का खुलकर विरोध किया। इसी कारण से आर्य समाज एक समाज सुधारक के रूप में सामने आया। उन्होंने बताया कि जिस समय युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कार्यक्षेत्र में उतरे, उस समय हमारे देश की जनता इतनी दब चुकी थी कि कोई बोलने का नाम नहीं लेता था। पहली बार महर्षि दयानन्द ने विद्रोह की आवाज उठाई और उसने सारी हिन्दू जाति को हिलाकर रख दिया। उन्होंने अपने देशवासियों को याद दिलाया कि वे क्या थे और क्या बन गए? उन्होंने हमें केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया बल्कि धार्मिक और सामाजिक उत्थान के लिए भी तैयार किया। उस समय की जनता के लिए विशेष कर बुद्धिजीवियों के लिए यह एक नई स्थिति थी। उनमें आत्मविश्वास पैदा हो गया और वे एक बार फिर अपने पैरों पर खड़े होने के लिए तैयार हो गए। यही कारण था कि जब महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की तो वह बहुत जल्दी ही सारे देश में इसका प्रचार हो गया। लोग आर्य समाज की तरफ आकर्षित होने लगे। आर्य समाज के कार्यों से समाज को एक नई दिशा मिली और उन कार्यों की चमक से सारा देश प्रकाशित होने लगा। उन्होंने कहा कि नव संवत् व आर्य समाज स्थापना दिवस मनाते हुए हम वर्तमान परिस्थितियों पर चिन्तन करते हुए आर्य समाज को फिर से नई दिशा देने के लिए कार्य करें। शांति पाठ के पश्चात ऋषि लंगर का आयोजन किया गया था। इस की व्यवस्था आर्य समाज के प्रधान श्री सतीश शर्मा जी द्वारा की गई थी।

-सतीश शर्मा प्रधान आर्य समाज

वेदवाणी

हे उषा! तू हमें जगा

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते।।

-ऋक्० ५।७९।१; सा० पू० ५।१।४।३; सा० उ० ८।३।११

ऋषि:-**सत्यश्रवा आत्रेय:**।। देवता-**उषा:**।। छन्द:-**पङ्क्तिः**।।

विनय-हे उष:! तू मुझे आज महान् ऐश्वर्य के लिए जगा। हे जगाने वाली देवि! तू मुझे ऐसा जाग्रत् कर कि मेरे लिए आज आत्मज्ञान का प्रकाश हो जाए, मुझे वह आत्मज्ञान मिल जाए जो सब ऐश्वर्यों का ऐश्वर्य है, जो बड़े-से-बड़ा दिव्य ऐश्वर्य है। तू तो 'दिवित्मती' है, दिव्य प्रकाश रखने वाली देवी है। तू मुझे अपने इस सर्वश्रेष्ठ दिव्य प्रकाश को और कब प्राप्त कराएगी? जिस तरह तू मुझे समय-समय पर जगाती रही है, मुझमें नये-नये ज्ञान-प्रकाश को चमकाती रही है, मुझे दिव्य उद्बोधनों से ठीक समय पर प्रबुद्ध करती रही है, उसी तरह तू आज हे सुजाते! हे अश्वसूनृते! मेरे इस 'सत्यश्रवा वाय्य' जीवन में उस अपनी परम ज्योति को भी जगमगा दे, उसे जगाकर मेरे इस जीवन को सफल कर दे। मेरा जीवन सत्य पर ही आश्रित है, सदा सत्यश्रवण के अनुसार चलने वाला 'सत्यश्रवा' है। इसलिए यह अवश्य तुझ द्वारा 'वाय्य' है, निरन्तर प्रापणीय है, अविच्छिन्नरूप से विस्तारणीय है। तू महान् व्यापक प्रियसत्यात्मिका वाणी है, तू महान् सत्यसङ्कल्प-रूपा है। तो मैं अपने इस 'सत्यश्रवस्' जीवन के अविच्छिन्न विस्तार के लिए तुझसे प्रार्थना न करूँ तो किससे प्रार्थना करूँ? इसलिए हे अश्वसूनृते! आज तो तू मुझे अपने उस परम सत्य को भी सुना दे। हे सुजाते! हे सुन्दर प्रकाश के साथ जन्मने वाली! हे उत्तम ज्ञान के साथ प्रकट होने वाली! तू मेरे लिए और किस दिन सुजाता होगी? देख, भौतिक धनों की तो मैंने कभी चाहना ही नहीं की है, ऋद्धि-सिद्ध के दिव्य ऐश्वर्यों की कामना को छोड़े हुए भी मुझे बहुत समय हो गया है, अब तो मैं अवश्य तेरे इस परम ऐश्वर्य का अधिकारी बन चुका होऊँगा। इसलिए हे उष:! तू मुझे आज अवश्य जगा, मुझे अपने उस आत्मज्ञान के महान् ऐश्वर्य में जगा, जिसे प्राप्त कर सब महात्मा लोग मालामाल होते रहे हैं, जिसमें जागकर सब मुक्त जीव निहाल होते रहे हैं। हे उष:! तू मुझे आज ऐसा ही जगा, ऐसे ही निहाल करने वाले महान् धन के लिए जगा।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com,** www.aryapratinidhisabha.org